करते रहे इसी समय आपने श्री दुर्बलनाथ जी महाराज की वाणियों के संकलन एवं परिभाषित करने का श्रम साध्य कार्य किया । उसके बाद आप ने पांच पौधा नारायणी माता में अपना स्थान बना लिया, वैशाख कृष्ण दशमी संवत 2050 को देवलोकगमन तक वहीँ तपस्या करते रहे।

श्री देवनाथ महाराज- आपके पिता का नाम श्री कल्याण मल महेंदवारिया एवं माता का नाम श्रीमती धापा देवी है आपका जन्म स्थान जयपुर है जबकि बालपन एवं बाद का समय दौसा में व्यतीत हुआ । आपके गुरु का नाम श्री बिच्छु नाथ जी महाराज है। आपने गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुए सेवा की इसके उपरांत 19 वर्ष वैराग्य में रहकर गुरु वचन के अनुसार मानव मात्र को योग साधना से जीवन को सहज बनाने का संदेश दिया। इनके शिष्य निम्नानुसार है – 1. श्री लीला नाथ जी महाराज, 2. श्री दया नाथ जी महाराज 3. श्री मंगल नाथ जी महाराज 4. श्री जय नाथ जी महाराज 5. श्री मिट्ठन नाथ जी महाराज, 6. श्री अमर नाथ जी महाराज 7. श्री प्रेमनाथ जी महाराज ।

हिंगवा गद्दी :- दौसा से पूर्व की और सिकराय उपखंड के **हिंगवा** गांव में नाथ समाज के विभिन्न पंथों में यह सत्य नाथी पंथ की प्रमुख गद्दी है। स्थानीय लोगों के अनुसार यहां कई संत महात्मा रहे हैं जिनमें से करीब 6 महात्माओं ने जीवित समाधि ली और कई तरह के चमत्कारों पर भी लोग विश्वास करते हैं।

इस समय वहाँ रामेश्वर नाथ विराजमान हैं । ऐसा माना जाता है कि, **महाभारत के युद्ध से पहले ही पता लग गया था कि यहां युद्ध होने वाला है. तभी वहां से चलकर बाबा थलनाथ महाराज हिंगवा आए थे और यहां उन्होंने अपना एक धूना लगाकर आसन जमाया ।** ऐसा माना जाता है कि जयपुर के राजा सवाई मानसिंह करीब 1800 वर्ष पहले यहां दर्शन करने आए थे तब उन्होंने इस मंदिर का निर्माण करवाना शुरू किया था। लेकिन मंदिर निर्माण एक बार में पूरा नहीं हुआ कई बार में अलग-अलग भाग में इस मंदिर का वर्तमान स्वरूप बन सका। संत लक्ष्मण नाथ जी के अनुसार, इस गद्दी पर कई महाराज रहे हैं. यहां 58 समाधि स्थल बने हुए हैं. इनमें छह महाराजों ने जीवित रहते ही समाधि ली। इनमें सुजान नाथ महाराज ने सबसे पहले समाधि ली थी। इसकी भी किंवदंति है, कहते हैं वो यहां से समाधि लेकर जमीन के अंदर से चलकर सबसे पहले कालवान गांव जाकर निकले। लोगों से पूछा यह कौन सा गांव है? पहाड़ी पर पशु चरा रहे चरवाहों ने बताया यह कालवान गांव है। सुजाननाथ महाराज ने दोबारा वहां ज़मीन के अंदर ही समाधि ले ली और फिर हिंगवा गांव के पहाड़ के पास निकले। यहां आज भी लोग पूजा करते हैं। दौसा के चारों और अरावली पर्वत माला है । अरावली के घने जंगल संतों को तपस्या करने के लिए हमेशा आकर्षित करते है ।

*****

संदर्भ :-

1. मेनारिया डॉ. पुरुषोत्तम लाल, राजस्थानी संत साहित्य, पृ. 66
2. मेनारिया डॉ. पुरुषोत्तम लाल, राजस्थानी संत साहित्य, पृ. 48
3. श्री दुर्बलनाथ, अनुभव आतम प्रकाश, (1986) पृ. 18
4. श्री दुर्बलनाथ, अनुभव आतम प्रकाश, बांदीकुई (1986) पृ. 207
5. श्री दुर्बलनाथ, अनुभव आतम प्रकाश, बांदीकुई (1986) पृ. 321
6. श्री दुर्बलनाथ, अनुभव आतम प्रकाश, बांदीकुई (1986) पृ. 230
7. श्री दुर्बलनाथ, अनुभव आतम प्रकाश, बांदीकुई (1986) पृ. 5

आधुनिक चिंतन और आदिवासी समाज की पहचान

अभिषेक कुमार मीना
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय

भूमिका -

भूमण्डलीकरण एवं उच्च तकनीकी के इस दौर में आदिवासियों पर चर्चा करना ऐसा लगता है जैसे अतिसभ्य बुदधि जीवियों के बीच पाषाणयुगीन मानव समूहों के बारे में बात की जा रही है। अतिसभ्य समाज और आदिवासियों के मध्य भौतिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्तर पर कई-कई युगों का जो अन्तराल दिखाई देता है उसी के कारण अतिसभ्य एवं आदिम सरोकार किसी भी भाषा में आपस में संवाद करने की स्थिति में नहीं है। हरिराम मीणा के शब्दों में "इस अन्तराल से परे आदिम समाजों की अस्मिता के सवालों को जब इस उत्तर-आधुनिक एवं वैश्विक दौर में समझने का प्रयास किया जायेगा तो एक छोर पर वह आदिम समाज है जिन्हें हम आदिवासी के नाम से जानते हैं, ये लोग अभी भी जीवन के प्रति आदिम दृष्टिकोण अपनाये हुए हैं। दूसरी ओर मुख्य राष्ट्र-समाज का विकसित एवं उच्च तकनीक से सम्पन्न वह वर्ग सामने आता है जो राष्ट्र- समाजों की सीमाओं को भी तोड़ता हुआ वैश्विक अग्रणी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।"[1]

आदिवासी अस्मिता का विश्लेषण करने के लिए 'आदिवासी' शब्द की व्याख्या के साथ- साथ आदिवासी जन समुदायों की पहचान भी अनिवार्य है। भारतीय समाज का अलग-थलग पड़ा यह हिस्सा अपनी संस्कृति को अनोखी मान्यताओं, परम्पराओं एवं संस्कारों से आज भी जीवित रखे हुए हैं। पूरे देश के विभिन्न अंचलों में आदिवासी जन समुदाय बिखरे पड़े हैं जिनमें से अधिकांश का परस्पर कोई सम्पर्क नहीं है। इन समुदायों की सांस्कृतिक जीवनशैली में कमावेश अन्तर दिखाई देता है फीर भी इनका समेकीकृत स्वरूप आदिवासी जन की एक छवि को इंगित करता है। हरिराम मीणा के शब्दों में 'यह छवि ही आदिवासी की पहचान है और इस पहचान को मानव समाज के रूप में सम्मान देना ही आदिवासी अस्मिता कही जा सकती है।'

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी इन दो शब्दों से मिलकर बना है। आदि अर्थात जो सबसे पहले से है और 'वासी अर्थात् निवासी। गंगासहाय मीणा ने 'आदिवासी' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है- "'आदिवासी' देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है।"[2]

'आदिवासी पद में 'आदि' इन जन-समुदायों के आदिम होने का बोध कराता है। आदिवासी शब्द एक पहचान को चिन्हित करता है। यह पहचान उनकी अस्मिता से जुड़ी हुई है। इस तरह भारतीय समाज में आदिवासी उन समूह एवं समुदायों के लिए प्रयुक्त होता है जो अपनी समान जीवन स्थितियां एवं दुःख-दर्द के साथ रह रहे हैं एवं जिनमें मूल मानवता का स्वर सुनाई देता है। भारत में आदिवासियों का इतिहास संघर्ष का इतिहास रहा है। सदियों पहले आदिवासियों को सभ्यता से बहिष्कृत कर जंगलों में धकेल दिया गया। इन जन-समुदायों ने जंगलों में रहते हुए अपनी संस्कृति की विरासत कायम रखी और पूरे आत्म-सम्मान के साथ जीते रहें। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है- "एक पराजित समूह होते हुए भी आदिवासियों ने अपनी संस्कृति, भाषा, अपने जीने की सामूहिक शैली, परम्पराओं और रीति-रिवाजों की विरासत को जिंदा रखा है।"[3]

जब-जब आदिवासियों के संस्कार, रीति-रिवाज, परम्परा व अस्मिता को नष्ट करने का प्रयास किया है, तब-तब ये लोग बाहरी घुसपैठ के खिलाफ उठ खड़े हुए है। असल में आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न उनके जल, जंगल, जमीन तथा प्राकृतिक संसाधनों के अधिकारों से जुड़ा हुआ है। आदिवासियों के पास अगर जंगल और जमीन न हो तो उस आदिवासी की पहचान ही खत्म हो जाती है । अंग्रेजों से लेकर शोषण के तमाम तन्त्रों ने आदिवाससियों पर अत्याचार किया। अपनी धूमिल अस्मिता व आत्मसमान को बचाने के लिए आदिवासियों ने अंग्रेजी राज में कड़ा संघर्ष किया। आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेजों के द्वारा अतिक्रमण के विरोध में आवाज भी उठी। अंग्रेजों के पक्षपात, ; 1855 ई., 'मुण्डा अन्याय और अत्याचार के खिलाफ 'कोल विद्रोह' ; 1831 ई. 'संथाल विद्रोह' ; 1855 ई., विद्रोह ;1900 ई. आदि अनेक जन-आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों के माध्यम से आदिवासियों ने अपनी अस्मिता, अधिकारों, जीवन एवं भूमि की सुरक्षा के साथ अपने सम्मान व अस्तित्व को पुनः स्थापित किया। रूपचन्द्र वर्मा ने 'कोल विद्रोह के संबंध में लिखा है- "इसे 1857 की महान क्रांति के पूर्व का प्रथम स्वतंत्राता संग्राम कहा जा सकता है। 'मुंडा विद्रोह' सेठ साहूकारों द्वारा आदिवासियों के शोषण के विरुद्ध तीखा आक्रोश था जो आदिवासी अस्मिता के उदय में मिल का पत्थर साबित हुआ। मुंडा विद्रोह के संबंध में नदीम हसनैन ने लिखा है- 'सभी प्रकार के शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध मुंडा विद्रोह भी जनजातीय आक्रोश का उत्कृष्ट उदाहरण है।"[4] इस तरह आदिवासियों ने हमेशा शोषण का विरोध किया। कहीं वन विभाग के कर्मचारियों व ठेकेदारों के खिलाफ, कहीं दिकुओं जमींदारों, महाजनों की लूट व अत्याचार के खिलाफ, कहीं प्रशासन पुलिस के खिलाफ अनेक लड़ाईयाँ लड़ी। जब-जब आदिवासी अस्मिता पर खतरा लगा तब -तब इन जन-समुदायों ने अपनी अस्मिता व अधिकारों के लिए संघर्ष किया और सशस्त्रा विद्रोह भी किये।

साहित्य समाज का नव सृजन करता है। समाज को नयी दशा व दिशा प्रदान करता है। बीसवीं सदी के अंत में भारत में नए सामाजिक आंदोलन दृष्टिगत हुए। दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों व जनजातीय समुदायों ने नई एकजुटता के माध्यम से अपने प्रति शोषण का विरोध किया और संपूर्ण समुदाय की मुक्ति हेतु सामूहिक अभियान चलाया। सामाजिक राजनीतिक आंदोलन के साथ-साथ साहित्यिक आंदोलन भी इस अभियान का मुख्य हिस्सा था। दलित विमर्श और स्त्री विमर्श इसी का परिणाम है। आज़ादी के पश्चात् प्रकाश में आए अस्मितावादी विमर्शों में दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श के बाद सबसे नया विमर्श आदिवासी विमर्श है। अब आदिवासी चेतना से युक्त आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आज आदिवासी साहित्य हिंदी के अलावा लगभग 100 आदिवासी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है, आदिवासी समाज व साहित्य पर निरन्तर पर चर्चा की जा रही है। किंतु आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है। आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज, जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण ज़रिया हो सकता है, बशर्ते उसका सही मूल्यांकन किया जाये इस हेतु इसके बुनियादी तत्वों की समझ होना अपरिहार्य है। आदिवासी साहित्य की उचित धारणाएँ एवं मापदण्ड होने आवश्यक हैं। इक्कीसवीं सदी के विमर्शों में आदिवासी विमर्श केन्द्र में है। जहाँ कुछ विमर्श राजनीति में पले तो कुछ अस्मिता व अस्तित्व को लेकर वाद-विवाद के विषय रहें, वहीं आदिवासी विमर्श में राजनीति और अस्मिता दोनों का समावेश है। आज आदिवासी साहित्य रचना के नाम पर लेखकों में प्रतिस्पर्धा हो रही है। ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों द्वारा आदिवासी संस्कृति, जीवन और समाज पर आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जबकि उन्हें आदिवासी दर्शन और संस्कृति की पर्याप्त जानकारी तक नहीं है। ऐसी रचनाओं को आदिवासी साहित्य कहकर प्रचारित, पाठित व वाचित किया जा रहा है, तथ्यों को नकारात्मक रूप में पेश किया जा रहा है। ऐसा साहित्य आदिवासी साहित्य को लेकर अधिकांशतः भ्रामक ही सिद्ध हुआ है। ग़ैर -आदिवासी प्रतिमानों द्वारा आदिवासी साहित्य को मूल्यांकित किया जा रहा है। दलित साहित्य की तर्ज़ पर ही आदिवासी साहित्य की सैद्धांतिकी निर्मित करने के प्रयास जारी हैं। ग़ैर-आदिवासियों का आदिवासी विषयक साहित्य भी साम्राज्यवाद विरोधी अभियान में आदिवासियों को महज़ आर्थिक संघर्ष के रूप में देखता है। सांस्कृतिक तौर पर भी आदिवासी दर्शन व साहित्य को आर्य संस्कृति में समाहित करने का प्रयास करता है। इस रचाव-बचाव के दौर में कुछ 'आदिवासी' साहित्यकार और बुद्धिजीवी, जिनका सामाजिक वर्ग बदल रहा है या बदल चुका है, ग़ैर-आदिवासी विश्वव्यवस्था की वर्चस्ववादी संस्कृति की शब्दावलियों का इस्तेमाल कर विमर्श को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से आदिवासियों के ही ख़िलाफ़ ले जाने की कोशिश में लग गये हैं। व्यवस्था के पद-प्रतिष्ठा और पुरस्कारों से लदे ये बुद्धिजीवी आदिवासियों को अविकसित एवं पिछड़ा बताकर व्यवस्था के साथ सामंजस्य बनाने का सुझाव दे रहे हैं। उनके अनुसार आदिवासी समाज और साहित्य तथाकथित मुख्यधारा से अनुकूलन करके ही आधुनिक सभ्यता का लाभ उठा सकता है। इस परिदृश्य में आदिवासी साहित्य की अवधारणा एवं उसकी मूल दार्शनिक आधारभूमि को मज़बूती से रेखांकित करना अति आवश्यक है। आदिवासी साहित्य के बारें में सही समझ, सही धारणाएँ निर्मित करना आवश्यक है।

यद्यपि आदिवासी साहित्य की अवधारणा या सैद्धांतिकी पूर्णतः विकसित नहीं हुई है, इसकी प्रस्थापनाएँ अभी विमर्श के दौर से गुज़र रही हैं। आदिवासी साहित्य को समझने के लिए आदिवासियों की वाचिक परंपरा को समझना होगा, जो अत्यधिक समृद्ध है। यूँ तो स्वयं आदिवासी जीवन और समाज किसी प्रकार के शास्त्र या सिद्धांतों का बंधन नहीं मानता, परंतु आदिवासी साहित्य के बारें में भ्रमित तथ्यों एवं प्रतिमानों के समाधान हेतु कुछ बुनियादी तत्त्वों पर चर्चा करना ज़रूरी है। आदिवासी साहित्य के पाठ और समझ को नए सिरे से देखने एवं समझाने के लिए इसकी अंतर्वस्तु एवं स्वरूप की समझ होनी आवश्यक है। इस पर विचार करते समय सबसे पहले प्रश्न उठता है कि आदिवासी साहित्य किसे कहेंगे? आदिवासी दर्शन क्या है और आदिवासी साहित्य में इसका क्या महत्त्व है? आदिवासी साहित्य के अंतर्गत किन-किन रचनाकारों को रखा जाये? क्या आदिवासी साहित्य की विश्व के शेष साहित्य से कोई पृथक संकल्पना है? साथ ही यह प्रश्न कि साहित्य परम्परा में क्या आदिवासी साहित्य को पर्याप्त स्थान दिया गया है? क्या इस साहित्य को तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य के समान्तर या विविधता के स्तर पर देखा समझा जा सकता है? उपर्युक्त सभी प्रश्न आदिवासी साहित्य की अवधारणा या स्वरूप से जुड़े हुए हैं। स्पष्ट है आदिवासी साहित्य यानी आदिवासियों द्वारा लिखा गया जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण हो । उसे हम आदिवासी साहित्य कह सकते हैं। आदिवासी साहित्य स्वांतः सुखाय नहीं लिखा जाता। यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस

साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन व समाज उनके दर्शन के अनुरूप व्यक्त हुआ है। कुछ आदिवासी साहित्यकारों व लेखकों ने आदिवासी साहित्य को निम्न प्रकार परिभाषित किया है- प्रसिद्ध मराठी आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुमराम कहते हैं- "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वन जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज-व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि -कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह का मुक्ति - साहित्य है आदिवासी साहित्य। वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है यह साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम-वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"[5]

प्रसिद्ध आदिवासी कवयित्री रमणिका गुप्ता कहती हैं "मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा। अर्थात् आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।"[6]

वैसे जो आदिवासी समर्थक साहित्य के रचनाकार होते हैं, वे भी आदिवासियों की समस्याओं के हल हेतु कंधे से कंधा मिलाकर खडे होते हैं। आदिवासी कथाकार रूपलाल बेदिया के अनुसार- "अगर आदिवासी विषय, दर्शन, संस्कृति के अनुकूल साहित्य ग़ैर-आदिवासी लेखक भी लिखते हैं तो उसे आदिवासी साहित्य मानना चाहिए। हमारी वाचिक परम्परा में जो समिद्ध साहित्य है उससे बहारी समाज के लेखक परिचित नहीं है। उन्हें लिखित रूप में सामने लाने की ज़रूरत है।"[7]

प्रो. व्यंकटेश आजाम लिखते हैं- "जो आदिवासी जीवन से प्रेरणा लेकर लिखा हुआ है, वह आदिवासी साहित्य है।"[8]

आदिवासी लेखिका वंदना टेटे की स्थापना है कि- "ग़ैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों पर रिसर्च करके लिखी जा रही रचनाएँ शोध साहित्य है, आदिवासी साहित्य नहीं। आदिवासियत को नहीं समझने वाले हिंदी-अंग्रेज़ी के लेखक आदिवासी साहित्य लिख भी नहीं सकते। सुनी-सुनाई बातों से आदिवासी जीवन का सच प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।"[9]

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी दृष्टि में तीन तरह के मत हैं-

आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है। यह अवधारणा ग़ैर-आदिवासी लेखकों की है। संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, रमणिका गुप्ता, बजरंग तिवारी आदि इसके समर्थक रहे हैं।

आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है। इस अवधारणा से संबंधित साहित्यकार/लेखक जन्मना एवं स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

'आदिवासियत' अर्थात् आदिवासी दर्शन के तत्त्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। इस अवधारणा को आदिवासी साहित्य की परिभाषा के सर्वाधिक नज़दीक माना जा सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं मतों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिसमें आदिवासी दर्शन होगा, वही सच्चे मायनों में आदिवासी साहित्य होगा। आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। आदिम समूहों में वर्गरहित, भेदभाव रहित, जाति रहित समाज व्यवस्था करना ही आदिवासी साहित्य का उद्देश्य है। आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन के तत्त्वों का होना है।

सवाल उठता है कि 'आदिवासियत' या आदिवासी दर्शन का स्वरूप क्या है और आदिवासी साहित्य में इसकी पहचान कैसे करेंगे? इसके जवाब में कह सकते हैं कि आदिवासियों के जीवन व समाज से संबंधित प्रत्येक विशेषता, परम्पराएँ जैसे- प्रकृति के सान्निध्य में रहना, मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह-अस्तित्व, अपने आप में खुलापन, सामूहिकता, सहभागिता, आदिवासी संस्कृति, जीवन-शैली, उनकी अपनी समस्याएँ, स्वतंत्रता, जल, जंगल, ज़मीन, अपनी मातृभाषा, अपना इतिहास, लोककथाएँ, मुहावरे, मिथक, विकास की अपनी परिभाषा इत्यादि सब आदिवासी दर्शन के अंतर्गत निहित है। जल, जंगल, जमीन आदिवासियों के मूल आधार हैं और आदिवासी साहित्य के मूल तत्त्व भी यहीं होने चाहिएँ। इन तत्त्वों के आधिकारिक अनुभव के साथ जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसे हम आदिवासी साहित्य कहेंगे, किंतु जो आधिकारिक अनुभव पर आधारित नहीं है, विशुद्ध काल्पनिक है, जिसे केवल रोमांटिक नज़रिये से देखा गया है, वह आदिवासी साहित्य नहीं है। आदिवासी जीवन की गहन अनुभूति के आधार पर रचा जाने वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य होगा।

हिंदी में पिछले दो - तीन दशकों से अस्मितावादी लेखन चर्चा का विषय बना हुआ है। यही दौर है जिसमें स्त्री, दलित, आदिवासी आदि उत्पीड़ित अस्मिताओं ने साहित्य में बढ़-च बनाने के लिए इसकी स्रात सामग्री और उसके आधार पर बनने वाली आदिवासी साहित्य की परंपरा की पड़ताल करनी बहुत जरूरी है। साथ ही आटिवासी साहित्य की विचारधारा पर भी बात करनी आवश्यक है। जब हम आदिवासी साहित्य की परंपरा और विचारधारा का व्यवस्थित अध्ययन करेंगे तो उसकी प्रवृत्तियों को भी समझ पायेंगे। जाहिर है मुक्तिकामी विमर्शों के दौर में इन विमर्शों और अस्मिताओं से संबंधित साहित्य की सही परंपरा और प्रवृत्तियों के अध्ययन के माध्यम से ही हम मूल्यांकन की सही प्रविधि निर्मित कर पायेंगे। आदिवासी साहित्य के अध्येता प्रो. वीर भारत तलवार ने तद्भव - 34 में छपे अपने लेख में आदिवासी संबंधी साहित्य की चार श्रेणियाँ बनाई हैं-

1. कुछ ऐसे लेखक हैं जो आदिवासी समाज के बारे में बहुत कम और सतही जानकारी रखते हैं और साथ ही अपने सवर्ण हिंदू संस्कारों से ग्रस्त हैं, अपने सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहां से ग्रस्त हैं और उसी दृष्टि से आदिवासी समाज को चित्रित करते हैं।
2. दूसरी श्रेणी उन लेखकों की है जो लंबे समय से आदिवासियों के करीबे रहते आए हैं और उनसे पूरी सहानुभूति रखते हैं, उनके समाज से थोड़ा-बहुत वाकिफ भी हैं। इनकी मुख्य प्रवृत्ति आदिवासियों के दमन, शोषण और उत्पीड़न को चित्रित करने और उनकी आर्थिक राजनीतिक समस्याओं को उठाने की है।
3. उन लेखकों का साहित्य जा आदिवासियों के बीच लंबे समय तक रहे हैं, जिन्होंने उनका अच्छा और बुरा देखा है और उनकी प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास किया है। और
4. चौथी श्रेणी खुद आदिवासियों द्वारा लिखे साहित्य की है। वह उन्होंने अपनी मूल भाषाओं में लिखा हो या हिंदी, बांग्ला या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, इससे फर्क नहीं पड़ता।' इन चार श्रेणियों में से वीर भारत तलवार चौथी श्रेणी को ही प्रामाणिक आदिवासी साहित्य मानते हैं और शेष तीन श्रेणियों को आदिवासी संबंधी साहित्य। चाथी श्रेणी, यानी स्वयं आदिवासियों द्वारा लिखित साहित्य के बारे में वे लिखते हैं, "इसकी गुणवत्ता बिल्कुल अलग किस्म की है। आदिवासियों के जीवन और समाज के सच्चे चित्र यहीं मिलते हैं।'

आदिवासी साहित्य के नाम पर मुख्यतः तीन तरह का साहित्य हमारे सामने है:

आदिवासियों के बारे में लिखा गया साहित्य।
आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य।
आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य।

आदिवासियों के बारे में लिखे गए साहित्य का आदिवासी साहित्य के रूप में दावा करना सहज है इसीलिए शोधार्थी अक्सर रेणु के 'मैला आंचल' के संथाल प्रसंग या यागेन्द्रनाथ सिन्हा के 'वनलक्ष्मी से आदिवासी साहित्य की शुरुआत मान लेते हैं। कुछ लोग तो तुलसीदास के रामचरितमानस में आए वन के प्रसंगों को भी आदिवासी साहित्य में मान लेते हैं और इसी दृष्टि से विश्लेषण करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि जहाँ भी वन, जंगल या किसी आदिवासी समुदाय का जिक्र आ जाता है, उसे ही आदिवासी साहित्य मान लिया जाता है और इससे 20वीं सदी के आखिरी दशक में प्रमुखता से उभरे आदिवासी साहित्य के आंदालन के बारे में भ्रमों का निमार्ण होता चला जाता है। आदिवासी चिंतक हिंदी साहित्य में आए वन या आदिवासी प्रसंगों को आदिवासी साहित्य मानने से इनकार करते हैं। इस तरह आदिवासी साहित्य के बारे में दूसरा विचार सामने आता है- आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। यह विचार स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य के प्रभाव में निर्मित हुआ है। जाहिर है इस तर्क की अपनी सीमाएँ हैं। अनुभूति की प्रामाणिकता किसी साहित्य का एकमात्र आधार नहीं हो सकती। आज जब आदिवासी समाज गहरे सांस्कृतिक हमलों से गुजर रहा है, ऐसे में आदिवासी समाज का सच लिखने के लिए केवल किसी समुदाय में पैदा हो जाना काफी नहीं है। आदिवासी समुदायों का बड़ी संख्या में हिंदूकरण और ईसाईकरण हुआ है। इसने उनकी मौलिक समझ और दर्शन को बहुत प्रभावित किया है। इस प्रक्रिया में आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीसरा विचार सामने आता है कि आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य माना जाए। जाहिर है आदिवासी दर्शन ही वह तत्व है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष समाज और साहित्य से अलग करता है। यह आदिवासी जीवन का मूल है और जिस पर चातरफा हमले हो रहे हैं इसलिए जहाँ आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है वहीं इसे बचाना आदिवासी साहित्य आंदालन का मुख्य ध्येय है।

निष्कर्षत: आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरु हुआ अस्मितामूलक विमर्श है। इसके केंद्र में आदिवासियों के जल जंगल जमीन और जीवन की चिंताएं हैं। माना जाता है कि 1991 के बाद भारत में शुरु हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासियों की संपदा के लूट का रास्ता भी खोल दिया। विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय एवं देशी कंपनियों ने आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीनों से बेदखल कर दिया। इसने आदिवासी इलाकों में बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया। बड़ी संख्या में झारखंड, छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि इलाकों से लोग बड़े महानगरों जैसे दिल्ली, कोलकाता आदि में आने को विवश हुए। इन आदिवासी लोगों के पास न धन था, न ही आधुनिक शिक्षा थी। शहरों में ये दिहाड़ी मजदूर या घरेलू नौकर बनने को बाध्य हुए। विशालकाय महानगरों ने इनकी संस्कृति, लोकगीतों और साहित्य को भी निगल लिया। नई पीढ़ी के कुछ आदिवासियों ने शिक्षा हासिल की और अवसरों का लाभ उठाकर सामर्थ्य अर्जित किया। उन्होंने सचेत रूप से अपने समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना आरंभ किया। उन्होंने संगठन भी बनाए। आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास की नए सिरे से तलाश की। उन्होंने अपने नेताओं की पहचान की। अपने लिए नेतृत्व का निर्माण किया। साथ ही समर्थ आदिवासी साहित्य को जन्म दिया। प्रतिरोध अस्मितामूलक साहित्य की मुख्य विशेषता है। आदिवासी विमर्श भी आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व संबंधी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है। यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की माँग करता है।

आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित साहित्यिक आंदोलन है जो आदिवासी परंपरा से अपने तत्व लेता है और 21वीं सदी के पहले दशक में अकादमिक जगत में अपना अलग साहित्यिक आंदोलन होने का दावा प्रस्तुत करता है। समकालीन आदिवासी लेखन की शुरुआत हमें उदारवाद, बाजारवाद और भूमंडलीकरण के उभार से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की, इसलिए इसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ । शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक उर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा का नाम ही समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये गए और किये जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है। आदिवासियों ने किसी कौम पर राज करने के लिए नहीं, लेकिन अपना अस्तित्व बचाने के लिए बार-बार विद्रोह किया है। पिछली दो सदियाँ आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं। इन विद्रोहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली, लेकिन वह माखिक ही अधिक रही। समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में आदिवासी समाज में हजारों साल पुरानी साहित्य की माखिक परंपरा को रखा जा सकता है, जिसे पुरखाती कहा जाता है। पूर्वोत्तर भारत में लगभग डेना, माकी मुंडा, गोंड रानी दुर्गावती और तमाम आदिवासी पुरखों के जीवन और आंदोलनों से चेतना और प्रेरणा लेकर आगे बढ़ रहा है।

****

संदर्भ सूची: -

1. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2013, पृष्ठ 168
2. आदिवासी साहित्य विमर्श, गंगासहाय मीणा, पृष्ठ 19-249
3. आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिका गुप्ता, हाशिये का वृत्तांत, सं. दीपक कुमार, देवेन्द्र चाबे, पृष्ठ 353
4. आदिवासी साहित्य यात्रा, सं. रमणिका गुप्ता, संस्करण 2016, पृष्ठ 24
5. आदिवासी साहित्य: परम्परा और प्रयोजन, वंदना टेटे, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 87
6. आदिवासी दर्शन और साहित्य, सं. वंदना टेटे, संस्करण 2016, पृष्ठ 24
7. आदिवासी साहित्य, सं. खन्नाप्रसाद अमीन, पृष्ठ 24
8. हरिराम मीणा जी का साक्षात्कार, युद्धरत सं. रमणिका गुप्ता
9. आदिवासी साहित्य यात्रा, सं. रमणिका गुप्ता, संस्करण 2016, पृष्ठ 29